अज्ञेय के प्रमुख उपन्यासों का वस्तुगत मूल्यांकन : एक अध्ययन

डॉ0 रानीबाला गौड़,
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग,
डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बुलन्दशहर (उ0प्र0)
सम्बद्ध
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ (उ0प्र0)

गरिमा वर्मा,
शोधछात्रा–हिन्दी,
डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बुलन्दशहर (उ0प्र0)
सम्बद्ध
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ (उ0प्र0)

शोध सारांश

अज्ञेय जी की रचनायें व्यक्ति चेतना कुण्ठा से कैवल्य यात्रा की महागाथा है। जो एक कलकार के संघर्ष, विकास तथा निष्पत्ति की कथा को दर्शाता है। साथ ही एक विकासशील व्यक्तिव की विकास प्रक्रिया की सहज गति को भी रेखांकित करता है। तथा उनकी रचनायें उनके चिन्तन को प्राथमिक अनुभूति की प्रामाणिक प्रदान करता है। अज्ञेय की रचनाओं में जितनी महानता के दर्शन होते हैं उतने ही महान व्यक्तित्व के दर्शन उनकी रचनाओं के माध्यम से पाठकों को होते हैं। अज्ञेय की रचना संस्कार का एक दुर्लभ आयाम है, जो मानव अनुभूतियों तथा सम्भावनाओं के नये सीमान्तों को उजागर करता है। उनके उपन्यासों में मानवीय व्यक्तित्व की परिपूर्णता की ओर क्रमिक यात्रा लेखक की चिन्तन का केन्द्रीय तत्व है।

'शेखर : एक जीवनी' अज्ञेय का पहला उपन्यास है। यह उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है। इसका पहला भाग सन् 1941 ई0 में और दूसरा भाग सन् 1944 ई0 में प्रकाशित हुआ। 'शेखर' के प्रथम भाग की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है–शेखर : एक जीवनी' तीन भागों में विभक्त है। तीनों भाग एक ही कथासूत्र से गूँथे होकर भी अलग–अलग भी प्रायः संपूर्ण है। कहा जा सकता है कि जीवनी वास्तव में तीन स्वतन्त्र उपन्यासों का अनुक्रम है शेखर के तीन भागों में एक–एक तानता है, कालीन के रंग–बिरंगे बाने को जैसे मोटे और सख्त बटे हुए सूत का एकरंगा तानाधारण करता और सहजा है उसी तरह जीवन के तीन भागों की रंगीन गाथा में मेरे अभिप्रेत, मेरे कथ्य का एक तन्तु है, जो एक है, अविभाज्य है, मेरी ओर से जीवन की आलोचना और जीवन का दर्शन है।

Keywords: *शेखर : एक जीवनी, नदी के दीप, अपने–अपने अजनबी।*

शेखर एक जीवनी प्रथम भाग में शेखर के बचपन और किशोरावस्था का मनोविश्लेषण है। दूसरे भाग में उसकी युवावस्था की मनः स्थितियों का चित्रण है। बचपन से युवा होने तक शेखर की कथा उसके व्यक्तित्व और परिवार के अंतः संघर्ष की कथा है। वस्तुतः शेखर का विद्रोही व्यक्तित्व परंपराबद्ध परिवार के साथ उसके प्रारम्भिक तनावों और टकारावों का ही प्रतिफल है।

'शेखर अपने जीवन का प्रत्यावलोकन तथा उसी के साथ आत्मान्वेषण कर रहा है–ऐसे क्षण में जहां उसे लगता है कि उसका जीवन समाप्त होने वाला है। वह एक फांसी पा जाने वाला कैदी है। मृत्यु के आसन्त संकट में उसे अपने जीवन की सार्थकता उसके मूल्य का प्रश्न

बेचैन करता है। ''अगर यही मेरे जीवन का अन्त है, तो उस जीवन का मोल क्या है, अर्थ क्या है, सिद्ध क्या है–व्यक्ति के लिए मानव के लिए ?'' तो शेखर आत्मोपलब्धि के लिए अपने जीवन का अर्थ तलाशने के लिए अपने जीवन के प्रत्यावलोकन में आत्मान्वेषण करता है। आत्मन्वेषण अपने 'सेल्फ' की सूक्ष्म जांच–परख अपने स्वभाव की खोज की बेकली को उपन्यास की विधा में पर्याप्त महत्व मिला है। 'शेखर' में हम यह पाते हैं। अतः उसके महत्त्व का यह एक बिन्दु है।'[1]

'शेखर ने अपने अनुभव के आधार पर यह सीखा और समझा है कि अहन्ता, भय और सेक्स ये तीन महती प्रेरणाएं हैं जो प्रत्येक मानव के जीवन का अनुशासन करती है। वस्तुतः यह समझ शेखर की न होकर उपन्यासकार अज्ञेय की है। खैर 'समझ' चाहे शेखर की हो या अज्ञेय की उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। किन्तु है यह 'मनोविज्ञान समार्थित। उपन्यासकार की यह मान्यता सर्वथा मनोवैज्ञानिक प्रतीत होती है कि उपर्युक्त तीनों शक्तियों का इतना शीघ्र उद्‌भास जीवन की पहली दो स्मृतियों में उनका विद्यमान होना यह जताता है कि ये इतनी महत्त्वपूर्ण है कि मानव उन्हें अपनी मानवता के साथ ही पाता है, बाद की परिस्थिति या व्यवहार से नही शेखर की ये प्रेरणाएं नैसर्गिक और जन्मजात है। इन तीनों मूल प्रेरणाओं के परिप्रेक्ष्य में ही वह अपने जीवन की घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण और प्रत्याहन करता है।''[2]

अज्ञेय ने घटनाओं की सहायता से कथानक का विकास किया है। इन घटनाओं में काम वासना सम्बन्धित घटनाओं को निःसंकोच रूप से लिया है। मानव आचरण को प्रभावित करने वाली कामरूप मूल शक्ति की उन्होंने अभिवंदना की है। आत्मर्पण को मानव की स्वाभाविक एवं वैध वृत्तिमाना है। इसीलिये उन्होंने नैतिकता और नैतिक मर्यादाओं की अवहेलना की है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र शेखर है। शेखर की बुद्धिमत्ता उसकी आन्तरिक, तेजस्विता उसे एक निराला रूप प्रदान करती है। शेखर को कुठित करने में सामाजिक रूढ़ियों बन्धनों अव्यवहारिक और जबरन थोपी गयी उम्मीदें हैं। इसी कारण शेखर के अन्तर का अहं उमड़ पड़ता है। इस उपन्यास में शेखर के जीवन में उठने वाली 'विद्रोह भावना' का विकास किया गया है।

'शेखर एक जीवनी' के पहले भाग में मिलता है जो शेखर ने उस रात देखा था जब अपने छोटे भाई को पेंसिल न देने के अपराध में उसकी माँ ने उसका हाथ मेज पर रखकर उस पर पहले घूंसे और फिर जोर–जोर से पटरी का सिरा मारा था और शेखर ने पीड़ा और अपनी विवशता पर क्रोध को न सहते हुए कहा था, 'नहीं दूंगा, कह दिया नहीं दूंगा, चाहे जान से मार डालो। उस दिन शेखर ने खाना नहीं खाया था और न किसी ने उसे खाना खाने को कहा ही था। रात हुई, सब सो गए। त बवह भी थका हुआ सा चारपाई पर लेट गया और अन्धकार को फाड़ने की चेष्टा करता रहा। कुछ देर बाद चुपके से उसकी बड़ी बहन सरस्वती आई। शेखर ने उसकी गोद में अपना सिर रख दिया। तब आँसू आए और वह सो गया। सरस्वती ने उसका सिर धीरे से उठाकर तकिए पर रख दिया।'[3]

बाल्यकाल के बाद शेखर को जीवन में दो व्यक्तियों का सहयोग मिलता है, एक तो उसकी बहन शशि और आजीवन कारावास का दण्ड भुगतने वाले बाबा मदनसिंह पहले शशि आती है। शशि के पिता की मृत्यु का समाचार पाकर शेखर बड़ा दुःखी भाव से शशि के घर जाता है और वह वहां पहली बार किसी के जाने के बाद उसका दुःख कैसा होता है, उसे महसूस करता है। तो दुःख के प्रति उसका रुझान समस्यापरक न होकर तथ्यं परक है। इस प्रकार उसका बोध जो उसे शशि के घर आकर हुआ, दुःख की इतनी मात्र ही चेतना देता है। शशि

उसकी बात से असहमत होती हुई कहती है। दुःख उसी की आत्मा को शुद्ध करता है। जो उसे दूर करने की कोशिश करता है।

'उपन्यासकार अज्ञेय ने परिचय के लहजे में जैसे लिखा है : 'शेखर कोई बड़ा आदमी नहीं है, वह अच्छा भी आदमी नहीं है। लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है। वह अच्छा संगी नहीं भी हो सकता है, लेकिन उसके अन्त तक उसके साथ चलकर आपके उसके प्रति भाव कठोर नहीं होंगे ऐसा मुझे विश्वास है और कौन जाने आज के युग में जब हम, आप सभी संश्लिष्ट चरित्र हैं तब आप पायें कि आपके भीतर भी कहीं पर एक शेखर है जो बड़ा नहीं अच्छा भी नहीं लेकिन जागरूक और स्वतन्त्र और ईमानदार है।'[4]

'शशि शेखर की मानस हंसिनी है जो शेखर के जीवन के लिये अपने को उत्सर्ग कर देती है। शशि का जीवन भी अभुक्ति की कहानी है। अपने असफल दाम्पत्य के कारण वह शेखर के समक्ष समर्पित होती है। शशि में अहम् की प्रधानता है। वह जितनी अनुरागिणी है उतना ही त्यागिनी भी इसलिये स्फूर्ति दायिनी भी और सहृदया है प्रज्ञा भी माँ की मान रक्षा में स्वेच्छा से अनचाहे व्यक्ति के साथ विवाह–बंधन को स्वीकार करने वाली कर्त्तव्यपरायण और पति के दुर्व्यवहार एवं मार सहने में आत्मपीड़न मयी धीरा, परिव्यक्त हो जाने के बाद नर–नारी के समानाधिकार की वकालत में विद्रोहिणी तथा अनुकूल सम्पर्क से क्रान्तिकारिणी भी बनती है। विवाह की सामाजिक समस्याओं पर रोश व्यक्त करती हुई–शशि दाम्पत्य जीवन में उभय पक्षीय प्यार की अनिवार्यता पर बल देती है। 'गृहस्थ कार्य उभयमुखी होता है, किन्तु आज के जीवन में नारी पुरुष के उपभोग का साधन रह गई है, निजी सामग्री जिसे वह जब चाहे, जैसे चाहे, अपनी तृष्टि की आग में होम कर दे और उसकी अपील नहीं है क्योंकि स्त्री कभी दुहाई दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किस लिए जाती है ?'[5]

'शशि के दाम्पत्य जीवन की असफलता इसका प्रमाण है। शशि के दाम्पत्य जीवन की कटुता का एक और मनोवैज्ञानिक कारण है। व्याहपूर्व ही शशि ने मानसिक रूप में शेखर का वरण किया था। लेकिन माँ की हठवादिता के समक्ष शशि गरलपान करना स्वीकार कर लेती है। शशि के अचेतन की दमित भावना उसके दाम्पत्य जीवन के लिये रुकावट बन जाती है, फलस्वरूप समुचित अवसर मिलते ही वह शेखर के पास भाग आती है। वह शेखर को सब कुछ दे देना चाहती है पर शशि के अचेतन में कहीं गाठ है, जिसके कारण वह समागम के द्वारा परिपूर्ण नहीं बन पाती बल्कि कुछ उत्तेजनात्मक–चुम्बनों को सर्वस्व मान बैठती है।'[6]

'शेखर के व्यक्तित्व का विकास प्रेम घृणा और वासना तीन बिन्दुओं पर होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार उसका व्यक्तित्व त्रिकोणात्मक है। प्रेम, घृणा और वासना की यह भावना क्रमशः उसके पिता उसकी माँ तथा सरस्वती, शरदा, शान्ति और सबसे बढ़कर शशि आदि के संदर्भ में अधिक स्पष्टता से व्यक्त होती है। शेखर के मन में अपनी माँ के प्रति घृणा का भाव अत्यन्त सघन और तीव्र है। इसका मूल कारण यह है कि उसे अपनी माँ की ओर से अपेक्षित स्नेह न मिलकर बार–बार डांट फटकार और अविश्वास का प्रस्ताव ही मिलता है। जो स्नेह उसे मिलता है, वह अनुपाततः सामान्य कोटि का है, किन्तु उसकी आकांक्षा सदैव विशिष्ट स्नेह–प्राप्ति की रही है। स्नेह वैशिष्ट्य के अभाव में उसका मन माँ के प्रति विमुख और विद्रोही हो जाता है।'[7]

'शेखर के मन में जो भाव उसकी प्रारम्भिक अवस्था में जिस रूप में बन चुके हैं, वे ही आगे चलकर उसके अन्दर संस्कार के रूप में सक्रिय होते हैं। कालान्तर में, उसकी घृणा का

विस्तार विदेशी कपड़ों तथा विदेशी भाषा तक हो जाता है। व्यक्तिवादी शेखर में सामाजिक दाय–बोध का अभाव न होकर, पर्याप्त मात्रा में सहृदयता, मानवीय सहानुभूति तथा संवेदनशीलता के तत्त्व संश्लिष्ट रूप में दिखाई पड़ते हैं। बचपन में मनोरंजन के लिए पिंजरे में बन्द पक्षियों को उड़ाकर उनको उन्मुक्त करने में उसे संतोष होता है। निम्न जातीय विधवा के यहाँ शेखर को जाने तथा उसकी बेटी फूलाँ के साथ खेलने–खाने की कामना ही की जाती है। किन्तु उस मनाही के बावजूद उसका मन–प्राण सहानुभूति के भावों से आप्लावित हो जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि शेखर 'दूर बैठे उस विधवा की पूजा तक करने लग गया तथा फूलाँ भी उसके लिए एक पद दलित देवी–सी हो गई ।'[8]

'अज्ञेय के सारे उपन्यास लेखक के व्यक्तित्व के भीतर से फूटे हैं, इसलिए अनुभूति के विविध आयामों की अनुभूतियों के जटिल, संश्लिष्टि संबन्धों के बारीक से बारीक स्तरों को इन उपन्यासों में कलात्मक माध्यम से उद्घाटित किया गया है। लेखक ने जीवन की अनुभूतियों जीवन से ली है। हां उन्हें विश्लेषित मनोविज्ञान के आलोक में किया। लेखक ने स्वयं जीवन को जीकर जीवन के सत्यों को पाया है, और वही सत्य अपनी पूरी ईमानदारी, गहनता, स्पष्टता से उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है। अतः अपने व्यक्तित्व के अनुभव की आंच में जो कुछ कहते हैं उनमें सच्चाई की प्रखरता और बोधों की सूक्ष्मता लक्षित होती है।''[9]

'अज्ञेय अहम् के पूर्ण विकास के समर्थक है। जिसे इलाचन्द्र जोशी समाज के लिए घातक मानते हैं। शेखर अपने अनुभवों से सीखता चलता है और अपनी बुद्धि और अनुभव के आधार पर प्रेम, समाज तथा मानवीय संबन्धों का पुर्नमूल्यांकन करता चलता है। शेखर अपने प्रति, अपने अनुभवों के प्रति और अन्य व्यक्तियों के प्रति पूर्णतया ईमानदार है। ईमानदार है तभी वह जीवन जीकर सत्य पाता है, उन्हें स्वीकार करता है।'[10]

शेखर के अपने अस्तित्व में मौलिक गुण ही अधिक लगते हैं, जीवन के विराट प्रांगण का हिस्सा वे नहीं बन पाते शशि और राम जी बाबा उन्हें 'मानसिक' वेदना की दीप्ती में से पाते हैं, उनसे कुछ देर के लिए अभिभूत होता है फिर उन्हें विस्मृत कर देता है। कुछ हद तक परिवेश की प्रतिमानवीय शक्तियों के टकराने से पैदा हुई है, जबकि शेखर में वह अस्तित्व का गुण ही है।

'शेखर की विद्रोह–भूमि बहुत कुछ व्यक्ति गत और काल्पनिक है। सामाजिक यथार्थ से उसका मेल नहीं खाता, लेखक मनोविज्ञान का पंडित है, किन्तु शेखर के प्रति उसकी वैयक्तिक निष्ठा, कला–निर्माण और चरित्र–निर्माण दोनों ही कार्यों में बाधक सिद्ध हुई है। जो नहीं है वे जबरदस्ती तोड़ी–मोड़ी और गढ़ी हुई साफ नजर आ जाती हैं। नगेन्द्र की मान्यता है कि उपन्यास रूप में भी, आत्मकथा लिखने में, पूर्ण सत्य का निर्वाह अज्ञेय से नहीं हो पाया है। नगेन्द्र के अनुसार, 'शेखर जीवनी का एक अध्ययन है। परन्तु यह जीवन व्यक्ति का जीवन है, समाज या युग का जीवन नहीं है'' ''उसमें रसक्षीण है, या यों कहे उसमें रस के क्षण अत्यन्त विरल है।''[11]

'जीवनी के दूसरे भाग के अन्त तक पहुँचते–पहुँचते शेखर आतंकवादियों के दल में प्रविष्ट हो जाता है, जिसकी परिणति प्राणदंड के रूप में स्वाभाविक है। पर उपन्यासकार के लिए कला के रूप में सबसे बड़ी चुनौती यही उपस्थित है। पहले और दूसरे भागों में उन कारणों परिस्थितियों और मनःस्थितियों का विश्लेषण है, जिन्होंने शेखर को विद्रोही, क्रान्तिकारी बनाया। पर वह कैसा क्रान्तिकारी बना यह जानना हमारे लिए बाकी ही रह जाता है। प्रथम दो भागों में उसकी कोई स्पष्ट और प्रभावी मूर्ति हमारे समक्ष उपस्थित नहीं हो पाती।'[12]

'अज्ञेय जी ने भूमिका में लिखा है– ''धनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए Vision को शब्द बद्ध करने का प्रयत्न है।' अज्ञेय जी ने इसी कारण इसमें स्मृतिपरक आत्म कथानक पद्धति का प्रयोग किया है। लेखक नायक से अलग न रहकर एकाकार हो जाता है। वह स्वयं स्वीकार करता है– 'मैं शेखर की कहानी लिख रहा हूँ क्योंकि मुझे उसमें से जीवन के अर्थ के सूत्र पाने हैं किन्तु एक सीमा ऐसी आती है, जिससे आगे अपनी मैं और शेखर की दूरी बनाये नहीं रह सकता.....लेखक व्यक्तित्व–विश्लेषण का उद्देश्य लेकर चला है। इसलिए उसकी दृष्टि प्रायः अंतर्मुखी रही है। 'शेखर : एक जीवनी' में एक कथा शैली नहीं है कहीं विवरणात्मक, कहीं गीतात्मक और कहीं लघुकथा रूपात्मक होकर आगे बढी है। कवि सुर्लभ काल्पनिकता का यथार्थ कथाओं से समायोजन किया गया है। बहुत से स्थलों पर 'शेखर : एक जीवनी' एक उपन्यास न रहकर गद्य काव्य बन जाता है। लेखक अपने विजन को शब्दबद्ध करनाचाहता है। स्पष्ट है कि इस स्थिति में यथार्थ–बोध का प्रश्न नहीं उठता, विशेषतया सामाजिक यथार्थ का 'शेखर एक जीवनी' की कथा एक विजन ही है यथार्थ से उसका कोई सरोकार नहीं है।''[13]

'इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ अपवादों को छोड़कर 'शेखर : एक जीवनी' में वे सब विशेषताएं विद्यमान हैं, जो एक औपन्यासिक महाकाव्य में होनी चाहिए। इसमें बहिर्ष्मुखी विस्तार एवं आंतरिक प्रसार की कमी नहीं है। समाज में रहने वाले व्यक्ति–जीवन का समग्र रूप चित्रित हुआ है, ''परम्परागत साहित्य में जो राष्ट्रीय दृष्टि अपने ऐतिहासिक विकास की परिपूर्णता के बाद विकृति को प्राप्त हो रही थी उसके ऊपर उठ कर 'शेखर के कथाकार ने मानव संघर्ष तथा नियति की एक ऐसी कहानी प्रस्तुत की, जिसका नायक अपने सम्पूर्ण अंतराष्ट्रीय परिवेश के साथ एक आधुनिक व्यक्ति है।' इस तरह अज्ञेय जी ने आंचलिकता और राष्ट्रीयता की सीमाओं को लॉघकर व्यक्ति जीवन के सार्वभौमिक स्वरूप का अंकन किया है, जो कला की वास्तविक एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।''[14]

'नदी के द्वीप' अज्ञेय का दूसरा उपन्यास है। 'शेखर : एक जीवनी' की भाँति ही इसका भी उपजीव्य और स्वर मनोविश्लेषणात्मक है। 'शेखर एक जीवनी' शेखर (व्यक्ति) का जीवनी मूलक उपन्यास है, जिसमें 'रोमैन्टिक विद्रोह' को बड़ी निपुणता से अभिव्यक्त किया गया है। ठीक उसी प्रकार, 'नदी के द्वीप' में भी व्यक्ति नायक–भुवन के प्रणय–व्यापार तथा यौन भाव को विश्लेषित कर, उसके माध्यम से व्यक्तिवादी जीवन–दर्शन के प्रस्तुतीकरण का प्रयास किया गया है। अतः इसे 'रोमैन्टिक' उपन्यास की संज्ञा प्रदान करना उचित प्रतीत होता है। स्त्री पुरुष यहाँ समान स्तर पर मिलते हैं। एक दूसरे का आदर अनिवार्य है। कोई भी ऐसी बात करना मना है जिससे दूसरे को दुःख हो या ठेंस पहुँचे। बड़ी से बड़ी घटना या सन्दर्भ भी मन मुँटाव विग्रह का कारण नहीं बनते। स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश पाश्चात्य दर्शन के प्रभाव और उच्च शैक्षिक परिस्थितियों में नर–नारी के प्रेम–सम्बन्धों में परिवर्तन लक्षित हुआ जो समाज की परम्परागत नैतिक मान्यताओं को चुनौती देने के लिए पर्याप्त है। नैतिक धरातल पर विघटन की प्रक्रिया के लिए सामाजिक परिस्थितियों को उत्तरदायी माना गया। परिणामतः स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में स्त्री पुरुष सम्बन्धों के नवीन आयामों को अभिव्यक्ति मिली।'[15]

उपन्यास का चरित्र नायक अथवा सबसे प्रमुख पात्र हैं भुवन/मुख्य कथावृत भुवन को लेकर चला है। डॉ0 भुवन लेक्चरर है, गौरा उसकी शिष्या/चन्द्रमाधव भुवन का मित्र है। भुवन और रेखा का परिचय चन्द्रमाधव के माध्यम से ही हुआ है। रेखा विवाहित है, चन्द्रमाधव भी

विवाहित है। लेकिन उसकी पत्नी बड़ी साधारण स्त्री है। पत्नी ने उससे कभी कुछ मांगा नहीं था। उनके पास साधारण गिरस्ती की ही चीजें थी। लेकिन वह दूसरे बच्चे के बाद टूट गया था। इसलिये उसने पत्नी और बच्चों को छोड़ दिया था। इस उपन्यास में द्वीप ही द्वीप हैं, नदी मतलब समाज कहीं दृष्टिगत नहीं होता। 'नदी के द्वीप' में लेखक का जो विचार हमारे सामने आता है, वह यह है कि क्षण की अनुभूति अद्वितीय होती है, उसे बनाए रखना चाहिये। रेखा का आग्रह क्षण की इसी अद्वितीय अनुभूति को बनाए रखने का है और उपन्यास में वह इसी विचार की वाहक पात्र है।

'नदी के द्वीप' में वर्णित स्वप्न के प्रतीकों को इस प्रकार समझा जा सकता है। रेखा देखती है कि वह और भुवन नदी के किनारे की रौस पर बैठे जिसका तात्पर्य यह होता है कि उनके यौन सम्बन्ध को सामाजिक मान्यता नहीं मिल सकी है। व्यक्तित्व को समझने का प्रयत्न मनोविज्ञान और उपन्यास दोनों करते हैं। अतः दोनों का सम्बन्धित होना स्वाभाविक ही है। जैसे–जैसे मनोविज्ञान आगे बढ़ता जायेगा, उपन्यास को भी नये–नये क्षेत्र और विषय मिलते जायेंगे।''[16]

रेखा–भुवन के इस सर्वथा वैयक्तिक, समाज–निरपेक्ष सम्बन्ध की सामाजिक निष्पत्तियों को अज्ञेय जी ने अत्यंत सूक्ष्मता से दो परस्पर विरोधी धरातलों पर अंकित किया है। ये दोनों रेखा के मन स्तल है। भुवन से परिपूर्णता रखने वाली रेखा परिणाम के भय से अपने प्रेमी का भविष्य बांधने को तैयार नहीं है। रेखा से अलग होने के बाद भुवन भी अपने एकाकीपन में डूब गया। वैज्ञानिक दल में जाकर लौटने के बाद ही भुवन गौरा से मिल पाया है। वह भी स्वयं को रेखा के प्रति अपराधी मानता है और उसने अपनी पूरी प्रणय कथा गौरा को सुना दी है। भुवन और रेखा की प्रणय–कथा सुनकर गौरा को ईर्ष्या नहीं हुई। वस्तुतः भुवन, रेखा और गौरा के सम्बन्ध ईर्ष्या द्वेष से परिचालित है ही नहीं। शादी के बाद रेखा न स्वयं भुवन को गौरा से विवाह करने का सुझाव देती है। कोई पति को दोषी बनाते हैं कोई पत्नी को किन्तु, निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नदी के द्वीप की कथावस्तु 'शेखर की तरह संक्षिप्त और अपनी प्रकृति के अनुकूल है। वह चरितात्मक है घटनात्मक नहीं। इसलिये कथावस्तु बृहदाकार ग्रहण नहीं कर सकी है। उसकी प्रकृति पात्रों के मन की ओर जाने की है। वही उसका केन्द्र है। मन में जो कुछ घटता है वह पात्रों के जीवन के प्रति–फलित होता है। उपन्यास में व्यक्ति चरित्र और व्यक्तित्व ही नहीं एक ऐसी ही काव्यानुभूतियों के आधार पर संवाद सृष्टि हुई है। कथानक में सजती संवारती हुई काव्य पंक्तियाँ, प्रतीक और उपमान प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सक्रिय है। पूरे उपन्यास में प्रकृति आकृति काव्यानुभूतियों की ही संरचना है।

अपने–अपने अजनबी अस्तित्ववादी विचारधारा को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। इसका कथानक आस्था और अनास्था के मृत्यु दर्शन पर आधारित है। सेल्मा 'पौरस्त्य' संस्कृति की प्रतीक आस्थावादी है आज के मनुष्य के जीवन में इतनी अधिक अस्त–व्यस्तता और भाग–दौड़ हो गई है कि सब उन्हें 'अजनबी' लगते हैं। कथानक के अन्त में एक पात्र जगन्नाथन् आता है। जिसकी गोद में विक्षिप्त और बलात्कारित योके बिलखकर आत्महत्या कर लेती है। जो संयोगवश इस परिस्थिति में आ घिरी है। योके पहाड़ पर चढ़ने वाले दल के साथ आयी थी, मार्ग से भटककर योके सेल्मा के काठ के बंगले तक पहुँच गयी। जहां से बर्फ के तूफान के कारण वह शीघ्र ही बाहर न निकल सकी। सेल्मा अवश्य ही अपने पूर्व निश्चय के अनुसार इस बार वहाँ रुकी हुई थी। योके ने उससे पूछा था, 'आण्टी, आपको क्या

मेरा यहाँ रहना कष्टकर लगा । सेल्मा में निराशा है फिर भी वह जिए जा रही है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सेल्मा अर्थवत्ता प्राप्त अनुभवी दृष्टि का प्रतीक है और योके के शब्दों में उलझी हुई उन्हें दोहराती हुई भ्रमित दृष्टि का साकार रूप है। प्रथम खण्ड में सेल्मा ने मृत्यु के साक्षात्कार के क्षण में जीवन बोध को अनुभूत किया और योके के मृत्यु बोध के बाद धीरे–धीरे जीवन बोध की ओर लौटती है। सेल्मा की मृत्यु हो जाती है और तीसरे खण्ड की योके सेल्मा बनकर मौत का वरण कर लेती है। यह उपन्यास वस्तु विधान के क्षेत्र में एक नवीन और मौलिक उपलब्धि है। इस दृष्टि से विचार करने पर ऐसा लगता है, जैसे योके हाड़–मांस की न होकर चिन्तन, विचार और दर्शन की प्रतिमा है। अन्ततः उसकी प्रतीकात्मकता निर्विवाद और स्वयं सिद्ध है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय जी ने अपने उपन्यासों का विशेष चयन और निष्कर्ष निर्धारण अपने दार्शनिक चिन्तन के अनुरूप किया है। उनके चिन्तन में प्रसार और विस्तार की अपेक्षा गंभीरता और गहनता अधिक है। अतः उन्होंने समाज के व्यापक क्षेत्र से अपने उपन्यासों का कथानक न चुनकर उन्होंने व्यक्ति के किसी जीवत–खण्ड को चुना है और उसके जीवन में गहरे से गहरे उतर कर उसके जीवन के सूत्रों को पकड़ा है। फिर उसी के सहारे उसके समस्त जीवन की व्याख्या की है। यही कारण है कि अज्ञेय जी के उपन्यासों में दार्शनिक चिन्तन की बाढ़ सी आ गई है और उनके उपन्यासों का उद्देश्य पक्ष छिछला अथवा दुर्बल रहने के स्थान पर बहुत गम्भीर एवं स्थूल बन गया है।

'आज मानव कुण्ठा एवं पीड़ा का ऐसा शिकार बना हुआ है कि उसका जीना दूभर हो रहा है। ये कुण्ठायें, घुटन एवं बेवसी मानव को रात–दिन संत्रस्त कर रही है। उसे चैन से बैठने नहीं देती, उसके मस्तिष्क में हलचल पैदा करती रहती है, उसे भ्रष्टाचार एवं अनाचार के लिए प्रेरित कर रही है, उसके मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ रही है, उसके हृदय में क्षोभ एंव आक्रोश पैदा कर रही है, उसे झूठ बोलने के लिए विवश कर रही है और उसे चोरी, मक्कारी एवं अन्य दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त कर रही है। इन सबका कारण है, आर्थिक असमानता एवं विषमतायें। ये विषमतायें आज मानव को केवल संत्रस्त ही नहीं करती, अपितु, उसे धातु की तरह समाज की भट्टी में गला रही है।

सन्दर्भ

1. अज्ञेय चिन्तन और साहित्य–डॉ0 प्रेमसिंह, पृ0 111
2. अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना–डॉ0 नन्दकुमार, पृ0 81
3. हिन्दी उपन्यास : अछूते संदर्भ–डॉ0 रणवीर रांग्रा, पृ0 19
4. अज्ञेय के उपन्यास : कथ्य और शिल्प–डॉ0 नन्दकुमार राय, पृ0 41
5. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी चरित्र–डॉ0 रामविनोद सिंह, पृ0 75
6. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी चरित्र–डॉ0 रामविनोद सिंह, पृ0 76
7. अज्ञेय के उपन्यास : कथ्य और शिल्प–डॉ0 नन्दकुमार राय, पृ0 46
8. अज्ञेय के उपन्यास : कथ्य और शिल्प–डॉ0 नन्दकुमार राय, पृ0 47
9. रमेशबक्षी के उपन्यासों में व्यक्तिबोध– राजेन्द्र सिंह टोकी, पृ0 35
10. रमेशबक्षी के उपन्यासों में व्यक्तिबोध– राजेन्द्र सिंह टोकी, पृ0 35

11. शेखर एक जीवनी : मूल्यांकन–गोपाल राय, पृ0 14
12. शेखर एक जीवनी : मूल्यांकन–गोपाल राय, पृ0 18
13. हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यास–डॉ0 परमलालगुप्त, पृ0 24
14. हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यास–डॉ0 परमलालगुप्त, पृ0 25
15. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व–डॉ0 श्रीमती मंजुला गुप्ता, पृ0 64
16. हिन्दी उपन्यास : सृजन और प्रक्रिया–डॉ0 शिवबहादुर सिंह भदौरिया, पृ0 144